

जैनदर्शन की व्यावहारिकता

—डॉ. वीरसागर जैन

प्रायः देखा जाता है कि जैनेतर लोग भी जैन धर्म—दर्शन—आचार की बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं, किन्तु सारी प्रशंसा करने के बाद अन्त में— 'लेकिन', 'किन्तु' या 'परन्तु' जैसा कुछ लगाकर यह भी साथ में जोड़ देते हैं कि वह अव्यावहारिक है, उसे जीवन में उतारना संभव नहीं है, उससे समाज और राष्ट्र का हित नहीं हो सकता, इत्यादि—इत्यादि। अतः यहाँ जैनाचार्यों के विचारों में से चुनकर कुछ ऐसी बातें लिखी जा रही हैं जो जैनधर्म—दर्शन की व्यावहारिकता पर विशद प्रकाश डालती हैं।

ध्यान रहे यहाँ 'व्यावहारिकता' से हमारा अभिप्राय है कि— (क) जैनदर्शन की बातें मात्र अपनी आत्मा का कल्याण करके मोक्ष में जाने के लिए ही उपयोगी नहीं हैं, उनसे परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व का भी कल्याण होता है। (ख) जैनदर्शन की बातें कोरे उच्च आदर्श की भाँति पढ़ने—सुनने के लिए ही नहीं हैं, उनका हम सभी अपने जीवन में व्यवहार/अनुपालन भी कर सकते हैं। (ग) जैनदर्शन की बातें किसी दिव्यलोक की या कोरी अतिरंजकतापूर्ण ही नहीं हैं, वे हमारे जीवन में सहज देखी—समझी जा सकती हैं और उन पर विश्वास भी किया जा सकता है, वे विश्वसनीय हैं। (घ) जैनदर्शन की बातें मात्र शास्त्राज्ञा के रूप में शिरोधार्य नहीं हैं, उन्हें विज्ञान द्वारा सिद्ध और संपुष्ट भी किया जा सकता है। उक्त चार बिन्दुओं को यदि हम संक्षेप में कहना चाहें तो क्रमशः इस प्रकार भी कह सकते हैं—

- (क) लोकहितकरता ()
- (ख) प्रयोगधर्मिता (Practicability)
- (ग) विश्वसनीयता ()
- (घ) वैज्ञानिकता (Scientific)

कुछ लोग कहते हैं— जैनधर्म का तप—त्याग बहुत ही कठिन है, परन्तु वे यह ध्यान नहीं देते कि जैनाचार्यों ने तप—त्याग की बात करते हुए पुनः—पुनः 'यथाशक्ति' या 'शक्ति—अनुसार' शब्द का प्रयोग किया है। जैसा कि सोलहकारण भावनाओं में स्पष्ट कहा है— शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तपसि।¹

जैनाचार्यों ने कभी भी किसी से अपनी शक्ति से अधिक या जबरदस्ती करके कोई तप—त्याग करने को नहीं कहा है। अपितु उन्होंने तो बार—बार ऐसा कहा है कि सोच—समझकर व्रत धारण करो, अपनी शक्ति और परिस्थिति का भलीभाँति विचार करो और उसी के अनुसार छोटे—से—छोटा व्रत—संयम धारण करो। हाँ, इतना—सा अवश्य है कि जितना—सा भी धारण करो, अच्छी तरह (समीचीन श्रद्धापूर्वक) धारण करो, उसमें प्रमाद/लापरवाही/शिथिलता उचित नहीं। जैनाचार्यों के अनुसार व्रतों में अल्पता तो चल सकती है, पर शिथिलता नहीं। विचारणीय है कि क्या शिथिलता को इजाजत देना ही व्यावहारिकता होगा? हम समझते हैं कि नहीं, शिथिलता तो मनुष्य के घोर पतन का कारण बनती है।

जैनाचार्यों ने पूरी बात समझाई अवश्य है, और जो कोई उस पूरी को पाल सके तो उसे प्रेरणा भी दी है, किन्तु तुम भी पूरा ही पालो, चाहे शक्ति ही न हो— ऐसा कदापि नहीं कहा। इसके विपरीत उन्होंने तो 'अणुव्रत' जैसी संज्ञा देकर हमें अपनी शक्ति—अनुसार छोटे—से—छोटा व्रत—संयम पालने का उपदेश दिया है। सोचिए, भला 'अणुव्रत' से छोटा शब्द और दूसरा कौन—सा होगा? जैनाचार्यों के व्यावहारिक दृष्टिकोण का इससे सबल प्रमाण और दूसरा कौन—सा होगा कि उन्होंने 'अणुव्रतों' की स्थापना की है। जबकि कि जिन—प्रवचन में महाव्रतों के उपदेश का ही सर्वप्रथम विधान है और अणुव्रत का प्रथम उपदेश दंडनीय है।²

जैन-पुराण-ग्रन्थों में उन्होंने ऐसी सैकड़ों कथाएँ लिखी हैं जिनमें एक अणु-समान व्रत को ही धारण करके कोई साधारण व्यक्ति भी महान बन गया है। उदाहरणार्थ खदिरसार नामक भील की कहानी संक्षेप में ज्ञातव्य है—

“विन्ध्याचल पर्वत पर एक भील रहता था। उसका नाम खदिरसार था। एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ वन में शिकार खोज रहा था। उसने दूर से किसी मुनिराज को मृग समझ लिया और उन पर बाण छोड़ने लगा, किन्तु उसकी पत्नी ने उसे यह कहकर रोक दिया कि नहीं, वह मृग नहीं है, कोई वन-देवता लगता है। दोनों पति-पत्नी मुनिराज के पास पहुँच गये और उनसे कुछ धर्मोपदेश सुना। मुनिराज ने उसे शिकार एवं मांसाहार के त्याग की प्रेरणा दी, किन्तु भील ने इसके पालन में अपनी असमर्थता व्यक्त की। अन्त में उसने मात्र कौए का मांस त्याग करने की प्रतिज्ञा मुनिराज से ग्रहण की। उसका यह छोटा-सा व्रत जीवनभर तो आराम से निभता रहा, किन्तु अन्तिम समय में उसे कोई ऐसी बीमारी हो गई कि भीलों के वैद्य ने उसकी औषधि में कौए का मांस ही खाने की सलाह दी। सभी परिजनों ने उससे बहुत आग्रह किया कि वह व्रत तोड़कर कौए का मांस भक्षण कर ले। किन्तु उसने दृढ़तापूर्वक मना कर दिया। इसके फलस्वरूप वह साधारण भील मर कर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ और आगे चलकर राजगृही का राजा श्रेणिक हुआ जो आगे तीर्थकर भी होगा।”

इसी प्रकार की और भी अनेकानेक कहानियाँ यहाँ बताई जा सकती हैं, परन्तु विस्तारभय के कारण सम्भव नहीं है।

अणु-समान पालन करने की भी बात जाने दीजिए, जैनाचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि शक्ति नहीं हो तो बिल्कुल भी व्रत-संयम मत धारण करो, मात्र श्रद्धा समीचीन रखो, समीचीन श्रद्धा रखने से भी तुम्हारा पर्याप्त कल्याण हो सकता है। इस विषय में जैनाचार्यों की एक यह गाथा बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो उन्होंने यत्र-तत्र बार-बार दोहराई है। जैनाचार्यों के व्यावहारिक दृष्टिकोण को समझने के लिए इस गाथा पर बड़ी ही गंभीरतापूर्वक चिन्तन करना अपेक्षित है—

“जं सक्कइ तं किज्जइ जं च ण सक्कइ तहेव सददहणं।

सददहमाणो जीवो पावदि अजरामरं ठाणं।।”³

हिन्दी-जैन-कवियों ने भी अपने पूजा-पाठ-व्रत-कथादि के ग्रंथों में इस गाथा का भाव इस प्रकार प्रकार प्रस्तुत किया है—

“कीजे शक्तिप्रमान, शक्ति विना सरधा धरे।

धानत सरधावान, अजर-अमर पद को लहे।।”⁴

जैनधर्म में अहिंसा का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है।⁵ मन में उत्पन्न होने वाले तनिक-से रागादि भाव को भी हिंसा की कोटि में गिन लिया गया है। उसे सुनकर बहुत लोग अत्यधिक प्रभावित होते हैं, किन्तु प्रभावित होकर भी कुछ लोग कहते हैं कि लेकिन वह अव्यावहारिक है, उसका पालन सम्भव नहीं है। यथा—

“जले जन्तु थले जन्तु आकाशे जन्तुरेव च।

जन्तुमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः।।”⁶

अर्थ:—जल में भी जीव भरे हैं, थल में भी जीव भरे हैं और आकाश में भी जीव भरे हैं। और जब सारा लोक ही जीवों से भरा है तो कैसे कोई भिक्षु अहिंसक रह सकता है?

किन्तु जैनाचार्यों ने इस शंका का बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया है जो गंभीरतापूर्वक ध्यान देने योग्य है:—

“अघ्ननपि भवेत् पापी निघ्ननपि न पापभाक्।

परिणामविशेषेण यथा धीवरकर्षकौ ।।”⁷

अर्थ:— एक व्यक्ति हिंसा न करता हुआ भी हिंसक होता है और दूसरा कोई हिंसा करता हुआ भी हिंसक नहीं होता— यह सब परिणामों की विशेषता है। जैसे कि कोई धीवर दिनभर एक भी मछली न मार पाने पर भी हिंसक होता है और कृषक खेत में अनेक जीवों को मारता हुआ भी हिंसक नहीं होता।⁸

तात्पर्य यह है कि जैनाचार्यों ने हिंसा-अहिंसा का सूक्ष्मतम विवेचन करते हुए भी उसे अपने परिणामों (भावों) से जोड़कर रखा है— यह उनका बहुत बड़ा व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

जैनाचार्यों ने हिंसा के चार प्रकार (संकल्पी, विरोधी, आरंभी, उद्योगी)⁹ बताकर गृहस्थों को उनमें से मात्र संकल्पी हिंसा का त्याग करने का उपदेश दिया है¹⁰— यह भी उनका अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

एक बार की बात है। जयपुर के राजा ने किसी जैन मंत्री को सेनापति पद पर नियुक्त किया। किसी अन्य व्यक्ति ने चुगली की— “राजन्! वह तो चींटी भी नहीं मार सकता, युद्ध में शत्रुओं को कैसे मारेगा?” राजा को शंका हो गई। उसने उस सेनापति को बुलाकर कहा— “ये चींटी जा रही है, इसे शीघ्र मारो।”

सेनापति— “नहीं महाराज! यह सम्भव नहीं है।”

राजा— “तो इसका मतलब है कि मैंने जो सुना है वह सच है— तुम चींटी को भी नहीं मार सकते! और यदि ऐसा है तो फिर तुम युद्ध में शत्रु के सैनिकों को कैसे मारोगे?”

सेनापति— “सुनिए महाराज! मैं मात्र संकल्पी हिंसा का त्यागी हूँ, विरोधी हिंसा का नहीं। जान-बूझकर किसी निर्दोष प्राणी की बिना वजह हिंसा करना संकल्पी हिंसा है और अपनी रक्षार्थ अपने विरोधी/शत्रु/आक्रमणकारी की हिंसा करना विरोधी हिंसा है। मैं संकल्पी हिंसा कभी नहीं करता, किन्तु विरोधी के छक्के छुड़ाना अच्छी तरह जानता हूँ। आप युद्धभूमि में देखिएगा।”

इस प्रसंग से भी स्पष्ट है कि जैनदर्शन में हिंसा का सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन होने पर भी वह अव्यावहारिक नहीं है।

बहुत से लोग जैनदर्शन पर आरोप लगाते हैं कि वह राष्ट्रवादी नहीं है, पूरे राष्ट्र का हित नहीं सोचता, केवल अपनी आत्मा का ही हित करने की प्रेरणा देता है; किन्तु ऐसा नहीं है। जैन श्रावक निरन्तर राष्ट्र के हित की, समृद्धि की, उसके सर्वतोमुखी विकास की हार्दिक कामना करता रहता है। वह प्रतिदिन मन्दिर में पूजा करने के बाद भगवान से प्रार्थना करता है—

“सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।

देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।”¹¹

अर्थ:— जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि सभी पुजारियों, रक्षकों (सैनिकों), महामुनियों, साधुओं तथा सम्पूर्ण देश, राष्ट्र व नगर को भी शांति प्रदान करें।

इसी प्रकार के और भी अनेक कथन जैन-ग्रन्थों में यत्र-तत्र अनेकशः उपलब्ध होते हैं जिनमें जैन श्रावक निरन्तर राष्ट्र के सर्वांगीण हित की हृदय से कामना करता है।¹²

इतना ही नहीं, जैनाचार्यों ने तो अपने अनुयायियों को राष्ट्रहित के लिए मुनि पद का भी त्याग कर देने का विधान बताया है। कहा है कि यदि राष्ट्र पर आया संकट आपके प्रयत्न से दूर हो सकता हो तो मुनि पद छोड़कर भी उसे दूर करो, बाद में प्रायश्चित्त करके पुनः मुनि हो जाना। हम समझते हैं—यह बहुत बड़ी बात है। इस सन्दर्भ में प्रमाणस्वरूप ‘चारित्रसार’ नामक ग्रन्थ का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है—

“गूढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यास बंधुभिर्दुःसहपरिषहैरात्मना नृपतिभिर्वा निरस्तपरमेश्वररूपा गृहवासरता भवन्ति।।”¹³

अर्थः— जो कुमारश्रमण अवस्था में ही साधु होकर आगमों का अध्ययन करते हैं तथा पिता भाई आदि कुटुंबियों के आग्रह से अथवा घोर परिषहों को सहन न करने से किंवा राजा की किसी विशेष आज्ञा से अथवा अपने आप ही जो भगवती दीक्षा की श्रमण मुद्रा छोड़कर गृहस्थधर्म स्वीकारते हैं उन्हें गूढ़ ब्रह्मचारी कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जैनदर्शन एक राष्ट्रवादी दर्शन है।

जैनाचार्यों ने अपने ग्रन्थों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति— इन 5 स्थावर जीवों का अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन करके भी राष्ट्र की महती सेवा की है। यदि हम उसके अनुसार ही रहे होते तो आज पर्यावरण—प्रदूषण की विकराल समस्या से नहीं जूझना पड़ता। आज सारा विश्व ऊष्मीकरण (Global Warming) और जल—समस्या से भी अत्यधिक सन्त्रस्त और चिन्तित है— यह भी जैनाचार्यों के सन्देश की अनसुनी करने के कारण ही हो रहा है। यदि आज भी हम सचेत हो जाएँ और इस सम्बन्ध में उनके बताए मार्ग पर चलें तो हमें इन विकराल समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है।

जैनाचार्यों ने पानी का इस्तेमाल बहुत सोच—समझकर अत्यल्प और वह भी विधिपूर्वक छानकर करने का निर्देश दिया है। वैसा न करने के कारण विश्व में पानी की कमी का संकट तो पैदा हो ही गया है, मनुष्यों के स्वास्थ्य का भी घोर संकट उत्पन्न हो गया है। आज वैज्ञानिक अशुद्ध जल को ही अनेकानेक बीमारियों का कारण सिद्ध कर चुके हैं। 25 वर्ष पहले यदि कोई जैन श्रावक पानी छानकर पीता था तो लोग उसकी हँसी उड़ाते थे, परन्तु आज हर आदमी अपने हाथ में कमण्डलु की तरह बिस्लेरी की बोटल लेकर चलने लगा है। जैनाचार्यों ने हमें पहले से यही तो सावधानी रखने को समझा रखा है। यहाँ हमें अवकाश नहीं है कि जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित पानी—सम्बन्धी विचारों को यहाँ विस्तारपूर्वक रख सकें, अतः उन्हें उनके ग्रन्थों से ही पढ़ना चाहिए।

जैनाचार्यों ने रात्रिभोजन हेतु भी मना किया है। इसे भी आज विज्ञान द्वारा भलीभाँति पुष्ट किया जा चुका है। रात्रिभोजन स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक है— यह हम आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं। गली—गली में चिकित्सक और चिकित्सालय हैं, बड़े—बड़े अस्पताल भी हैं, पर सब जगह भीड़ लगी हुई है, कहीं—कोई जगह (Bed) खाली नहीं है। पहले पूरे गाँव या नगर में कोई एक वैद्य होता था और कभी किसी को आवश्यकता पड़े तो थोड़ा—सा चूर्ण या गोली आदि देकर नीरोग कर देता था, पर आज तो लोग बारह महीने सातो दिन दवाइयों के पत्ते के पत्ते खा रहे हैं। यह सब रात्रिभोजन का ही दुष्परिणाम है। रात में भोजन करना और फिर तुरन्त सो जाना— बस इसी से अनेक स्वास्थ्य—सम्बन्धी समस्याएँ पैदा हो गई हैं, क्योंकि भोजन को ठीक से पचने का भी मौका नहीं मिलता। किडनी, हार्ट, गैस आदि की बहुत—सी समस्याएँ आज रात्रिभोजन के कारण ही बढ़ती जा रही हैं। रात्रिभोजन—त्याग की वैज्ञानिकता को समझने के लिए ऐलक निर्भयसागर की पुस्तक “रात्रिभोजन : वैज्ञानिक दृष्टि” पठनीय है।¹⁴ यहाँ विस्तारभय से इस विषय पर और अधिक नहीं लिखा जा सकता।

जैनाचार्यों ने मांसाहार का भी सशक्त निषेध किया है। मनुष्य स्वभावतः शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं, अतः उसे मांसाहार से सर्वथा बचना चाहिए, किन्तु आज मांसाहार का जो प्रचलन बढ़ा है उससे वैयक्तिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय— सभी स्तरों पर भारी संकट उत्पन्न हो गया है। अनेक निष्पक्ष शोधों ने आज सिद्ध कर दिया है कि मांसाहार के समर्थन में दिये जाने वाले सभी तर्क कुतर्क हैं और मनुष्य को मात्र भ्रमित करने वाले हैं। मनुष्य के मांसाहार करने से आज प्रकृति का सारा सन्तुलन गड़बड़ा गया है, जंगल के जंगल नष्ट हो गये हैं, पशुओं की सैकड़ों प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं और चारों ओर रोंगटे खड़े कर देने वाला भय व्याप्त हो गया है। कत्लखानों के कार्य राष्ट्र की समृद्धि के नहीं, बरबादी के कारण सिद्ध हो रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग, पानी की कमी, मानव—स्वास्थ्य की हानि, आर्थिक हानि, वन—सम्पदा का विनाश इत्यादि ऐसी भयंकर—भयंकर समस्याएँ आज मांसाहार ने हमारे बीच उत्पन्न कर दी हैं कि जो आए दिन और भी नई—नई छोटी—मोटी अनेक समस्याओं के कारण बनती जा रही हैं। हमारे पास समय और स्थान नहीं कि यहाँ इस विषय पर भी विस्तार से चर्चा कर

सकें, अतः पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस विषय पर शोध-खोजपूर्ण अच्छा साहित्य पढ़ें, लोलुपी लोगों के बहकावे में आकर अपना और राष्ट्र का भारी नुकसान न करें।

जैनाचार्यों ने ब्रह्मचर्य व्रत के प्रसंग में श्रावकों को परस्त्री-त्याग या स्वदार-संतोष की सशक्त शिक्षा दी है— यह भी उनका व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के हित में दिया गया एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और परम व्यावहारिक संदेश है। आज इसी की उपेक्षा के कारण अनेक यौन रोगों की उत्पत्ति हो रही है, जिनमें से 'एड्स' भी एक है, जिसका नाम ही रोंगटे खड़े कर देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण— ये पांचों व्रत न केवल आत्मकल्याण के लिए उपयोगी हैं, समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण हेतु भी अत्यन्त उपयोगी हैं। इन पांचों व्रतों के पालन से जगत की अनेक समस्याओं से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यथा—

1. अहिंसा व्रत पालन से — आतंकवाद, मांसाहार, पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, जलाभाव।
2. सत्य व्रत पालन से — भ्रष्टाचार, साक्ष्यपरिवर्तन, मिथ्याभाषण, मिथ्याभिलेख।
3. अचौर्य व्रत पालन से — रिश्वतखोरी, टैक्सचोरी, असुरक्षा की भावना।
4. ब्रह्मचर्य व्रत पालन से — जनसंख्या-वृद्धि, भ्रूण-हत्या, एड्स आदि भयंकर यौन रोग।
5. परिग्रहपरिमाण व्रत पालन से — भण्डारण, बटवारा (सम्पत्ति-विभाजन), दहेजप्रथा।

जैनाचार्यों ने उक्त पांच व्रतों के अतिरिक्त भी अनेक व्रतों की शिक्षा मानव को दी है, जिनसे आत्मकल्याण के साथ-साथ जगत का भी कल्याण होता है और वे सभी व्यावहारिक भी हैं, उन्हें आसानी से पाला जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। उदाहरणार्थ— जैनाचार्यों ने एक 'अनर्थदण्डत्याग' नामक व्रत धारण करने की प्रेरणा दी है। इसके अनुसार आप अपने गृह-व्यापारादि प्रयोजनों की पूर्ति के लिए जो भी करना हो, सब कर सकते हैं, मात्र निष्प्रयोजन या व्यर्थ के पापकार्यों को ही छोड़ना होता है। इसप्रकार यह भी एक बहुत ही व्यावहारिक व्रत है।

जैनाचार्यों ने हमेशा ही मनुष्य को अपने दोनों लोक सुधारने की शिक्षा दी है। इस जन्म को बिगाड़कर मात्र अगले जन्म को ही सुधारने के हसीन सपने दिखाने में उनका विश्वास नहीं है। उनके अनुसार ऐसा सम्भव भी नहीं है कि इस जन्म को बिगाड़कर अगला जन्म सुधारा जा सके। उनका स्पष्ट मानना है कि समीचीन आचार-विचारों के द्वारा मनुष्य के दोनों ही लोक सुधरते हैं और मिथ्या आचार-विचारों से उसके दोनों ही जन्म बिगड़ते हैं। महान् जैनाचार्य श्री वादीभसिंहसूरि ने स्पष्ट कहा है—

“तत्त्वज्ञानं हि जीवानां लोकद्वयसुखावहम्।”¹⁵

और—

“तत्त्वज्ञानविहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतम्।”¹⁶

अर्थात् तत्त्वज्ञान से जीवों के दोनों लोक सुखी बनते हैं और तत्त्वज्ञान से रहित जीवों को सदैव दुःख ही दुःख प्राप्त होता है।

इस बात को एक हिन्दी-जैन-कवि ने भी बड़े ही सुन्दर ढंग से इस प्रकार कहा है—

“धरम करत संसार सुख, धरम करत निर्वाण।

धरम पंथ साधे बिना, नर तिर्यच समान।।”¹⁷

इस प्रकार जैनाचार्यों ने श्रावक-श्राविकाओं के जीवन में उभयलोक के समुचित समन्वय की सुन्दर कोशिश की है और इसीलिए यत्र-तत्र उनके ग्रन्थों में 'कामदं मोक्षदं देवम्'¹⁸ तथा 'भुक्ति-मुक्ति दातार'¹⁹ जैसे वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है।

जैनाचार्यों ने लोकविरुद्ध कार्य कथमपि न करने का निर्देश दिया है। उनके अनुसार तो—

“यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयम्।”

अर्थ— भले ही शुद्ध (अच्छी) बात हो, पर यदि लोकविरुद्ध हो तो उसे कथमपि नहीं करना चाहिए। लोक विरुद्ध कोई भी आचरण कभी भी नहीं करना चाहिए।

और भी कहा है—

“यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी।

ततो लौकिकाचारं मनसापि न लंघयेत्।।”²⁰

इतना ही नहीं, जैनाचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि हमें सम्पूर्ण लोकाचरण/ लोकव्यवहार/ लोकरीति ही प्रमाणस्वरूप स्वीकृत है; केवल इतनी—सी शर्त है कि उससे हमारे सम्यक्त्व और व्रत में दोष नहीं लगना चाहिए। यथा—

“सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न न चापि व्रतदूषणम्।।”²¹

जैनाचार्यों ने भक्ष्याभक्ष्य—विचार के प्रकरण में पांच प्रकार के अभक्ष्यों का वर्णन किया है— 1. त्रसघात, 2. बहुघात, 3. नशाकारक, 4. अनिष्ट, और 5. अनुपसेव्य। इनमें से ‘अनुपसेव्य’ अभक्ष्य का अर्थ है कि वे पदार्थ भी अभक्ष्य हैं जिनका सेवन लोक में निन्दनीय माना जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह भी उनकी व्यावहारिकता का ही जीता—जागता प्रमाण है।

जैनाचार्यों ने भूकम्प आदि विभिन्न आपदाओं के आने पर सिद्धान्त—ग्रन्थों के अध्ययन का निषेध किया है— यह भी उनकी व्यावहारिकता को भलीभाँति सिद्ध करता है, क्योंकि सारा लोक किसी भयंकर आपदा से घिरा हुआ हो और आप उस समय शास्त्रों के अध्ययन करने बैठें तो यह अच्छा नहीं लगेगा।

जैनाचार्यों को लोकविरुद्ध आचरण से इतना अधिक भय है कि उन्होंने न्यायशास्त्र जैसे तार्किक विषय में भी पक्षाभासों का वर्णन करते समय एक पक्षाभास का नाम लोकबाधित पक्षाभास ही रख दिया और उसका अनुमान प्रमाण में प्रयोग भी वर्जित बता दिया। यथा—

‘बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः।’²²

और— ‘शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत्।’²³

अर्थ—बाधित पक्षाभास पांच प्रकार का होता है— 1. प्रत्यक्षबाधित, 2. अनुमानबाधित, 3. आगमबाधित, 4. लोकबाधित और 5. स्ववचनबाधित। इनमें से जिस पक्ष में लोकव्यवहार से बाधा आती हो वह लोकबाधित पक्षाभास है। जैसे—कोई कहे कि मनुष्य का शिरःकपाल भी शंख और सूक्ति की भाँति पवित्र होता है तो यह लोकबाधित पक्षाभास है।

इस प्रकार जैनाचार्यों ने अपने प्रतिपादन में सर्वत्र ही लोकव्यवहार का पूरा—पूरा ध्यान रखा है।

किन्तु इस सबका अर्थ यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि जैनाचार्य हमें सर्वथा लोक—प्रवाह में बहने की शिक्षा दे रहे हैं, चाहे वह गलत ही हो; क्योंकि ऐसी स्थिति को तो उन्होंने बार—बार ‘लोकमूढता’ शब्द से कहा है और उसका कठोर शब्दों में निषेध भी किया है। यथा—

“आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।

गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते।।”²⁴

अर्थ—लोगों की देखादेखी किसी विशेष नदी—समुद्रादि में स्नान करना, रेत—पत्थर का टीला बनाना, पर्वत से नीचे गिरना, अग्नि में प्रवेश करना और इनसे स्वर्ग—मोक्ष की प्राप्ति होना समझना लोकमूढता है और वह सर्वथा त्याज्य है।

इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने भी 'नियमसार' में बहुत सुन्दर लिखा है—

“ईसाभावेण पुणो केई णिंदंति सुंदरं मग्गं ।

तेसिं वयणं सोच्चाऽभतिं कुणह जिणमग्गे ।।”²⁵

अर्थ:— लोक में अनेक लोग ईर्ष्या भाव से धर्म के सुन्दर मार्ग की निन्दा करते हैं, किन्तु उनकी बातें सुनकर धर्ममार्ग को छोड़ देना बिल्कुल उचित नहीं है ।

इस विषय में आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के विचार भी ध्यानपूर्वक पठनीय हैं—

“तातें विवाहादि कुलसम्बधी कार्यनिविषै कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बधी कार्य विषै कुल का विचार न करना ।।”²⁶

हिन्दी भाषा में एक जैन-कवि ने भी इसी प्रकार के विचार बड़ी अच्छी रीति से इस प्रकार प्रकट किये हैं—

“धन देकर तन राखिए, तन दे रखिए लाज ।

धन दे, तन दे, लाज दे, एक धर्म के काज ।।”²⁷

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनाचार्यों का सम्पूर्ण आचारशास्त्र नितान्त व्यावहारिक है, उसमें कहीं भी कुछ भी अव्यावहारिक नहीं है ।

आचारशास्त्र ही नहीं, जैनाचार्यों का विचारशास्त्र भी अत्यन्त व्यावहारिक और लोकमंगलकारी है । मैं इस सन्दर्भ में अपना एक अन्य लेख पूरा ही उद्धृत करना चाहता हूँ जो मैंने जयपुर में पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ-स्मृति-व्याख्यानमाला में “सामाजिक सौहार्द, समरसता और अनेकान्त दृष्टि” शीर्षक से प्रस्तुत किया था ।²⁸

प्रश्न:— जैनाचार्यों के ग्रन्थ चार अनुयोगों में विभाजित हैं— प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग । आपने यहाँ चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग की तो व्यावहारिकता का वर्णन कर दिया, किन्तु प्रथमानुयोग और करणानुयोग में तो बड़ी अविश्वसनीय एवं अव्यावहारिक की बातें लगती हैं, उन्हें कैसे विश्वसनीय और व्यावहारिक कहा जा सकता है?

उत्तर :— प्रथमानुयोग कथा-साहित्य के अन्तर्गत आता है । कथा-साहित्य की यह प्रकृति ही है कि उसमें काल्पनिकता और आलंकारिकता का भरपूर प्रयोग होता है और वह उसी कारण से अत्यधिक रोचक बनता है । इसके अतिरिक्त उसके उद्देश्य, प्रयोजन, सिद्धान्त-निरूपण आदि में कहीं भी कुछ भी अव्यावहारिक नहीं है ।

प्रश्न:— प्रथमानुयोग में बड़ी-बड़ी अवगाहना और लम्बी-लम्बी उम्र के पात्रों का वर्णन आता है, वह हमें बड़ा ही अविश्वसनीय लगता है ।

उत्तर :— हम देख रहे हैं कि दिन-प्रतिदिन मनुष्यों के शरीर का परिमाण, बल, आयु आदि कम होने जा रहे हैं । ऐसी स्थिति में करोड़ों-अरबों (असंख्य) वर्ष पूर्व के मनुष्यादि के परिमाण, बल, आयु आदि बहुत अधिक होंगे— ऐसा स्पष्टतया समझ में आता है । आज तो विज्ञान की कुछ खोजें भी इस बात को पुष्ट करती रहती हैं, क्योंकि यदा-कदा कुछ प्राणियों के विशालकाय रूप आज भी प्राप्त होते रहते हैं । उदाहरणार्थ निम्नांकित दो चित्र ध्यानपूर्वक द्रष्टव्य हैं²⁹ —



प्रश्न:- इस प्रकार प्रथमानुयोग की व्यावहारिकता भी समझ में आ गई है, किन्तु करणानुयोग की व्यावहारिकता को कैसे समझा जा सकता है?

उत्तर :- करणानुयोग बहुत अधिक बुद्धि वालों के लिए लिखा गया है, उसकी व्यावहारिक उपयोगिता वे ही भलीभाँति समझा सकते हैं। अधिक बुद्धि को दुरुपयोग होने से बचाकर उचित विषय में लगाये रखना भी एक प्रकार की व्यावहारिकता ही है।

करणानुयोग के कथन भी, हम स्थूलबुद्धियों को कभी-कभी अव्यावहारिक लगते जरूर हैं, पर वे होते व्यावहारिक ही हैं। जैसे- एक बार एक नगर में करणानुयोग के एक बहुत बड़े विद्वान मुनि पधारे। नगर में उनके गणित-ज्ञान की अपार ख्याति से जलकर वहाँ का एक गणित विषय का शिक्षक उनसे शास्त्रार्थ करने पहुँच गया और बोला- “आज यह निश्चित हो ही जाना चाहिए कि इस नगर में बड़ा गणितज्ञ कौन है- आप या मैं? आप मुझसे शास्त्रार्थ (विवाद) कीजिए।”

मुनिराज- “वाद-विवाद से कषाय बढ़ती है, अतः उससे बचना चाहिए। रही बात बड़े गणितज्ञ की सो चलो हमने स्वीकार कर लिया कि हम तो छोटे गणितज्ञ हैं; तुम ही बड़े गणितज्ञ सही।”

गणिताध्यापक- “नहीं, ऐसे नहीं चलेगा, आपको मुझसे शास्त्रार्थ ही करना होगा। तभी सही से निर्णय होगा।”

मुनिराज ने पास से ही मुट्ठी में रेत भरी और बोले- “अच्छा चलो, अभी तुम सिर्फ इतना बताओ कि इस मुट्ठी में कितने रेत के कण हैं?”

अभिमानि गणिताध्यापक इधर-उधर देखने लगा, उससे कोई भी उत्तर देते नहीं बना। मुनिराज बोले-“अरे, इतना-सा भी नहीं बता पा रहे हो, शास्त्रार्थ क्या करोगे? ‘मुष्टि-प्रमाण’ बोलना चाहिए था न!”

कहने का तात्पर्य है कि करणानुयोग का सारा गणित-भूगोलादि भी इसी प्रकार का अत्यन्त सहज-सरल और व्यावहारिक है।

प्रथमानुयोग और करणानुयोग की व्यावहारिकता को और अधिक समझने हेतु आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी के ‘मोक्षमार्ग-प्रकाशक’ का आठवां अधिकार पठनीय है।

जैन शास्त्रों की व्यावहारिकता को समझने के लिए हमें इस बात का सर्वप्रथम ही ध्यान रखना चाहिए कि जैनाचार्य स्वयं ही अशक्यानुष्ठान-सम्बन्ध-प्रयोजन वाले शास्त्रों की रचना के विरोधी रहे हैं। अनेक आचार्यों ने इस विषय में अपने विचार भी ग्रन्थारंभ में ही प्रकट भी किये हैं। यथा-

“शक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनमपि शास्त्रादाववश्यं वक्तव्यमेव, अशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनस्य सर्वज्वरहरतक्षक चूडारत्नालंकारोपदेशस्येव प्रेक्षावद्भरनादरणीयत्वात्। तथा शक्यानुष्ठानस्याप्यनिष्ठप्रयोजनस्य विद्वद्भिरवधीरणात्तृविवाहादिप्रदर्शकवाक्यवदिति।”³⁰

अर्थ:— शास्त्र के आदि में शक्यानुष्ठान इष्ट प्रयोजन भी अवश्य ही कहना चाहिए। क्योंकि जो बात इष्ट प्रयोजन वाली होते हुए भी अशक्यानुष्ठान हो वह बुद्धिमानों के द्वारा आदरणीय नहीं होती। जैसे— किसी जीर्णज्वर वाले पुरुष के लिए कहना कि 'मणिहारे सर्प के मस्तक के मणि से सर्व प्रकार का ज्वर दूर हो जाता है' यह उपदेश इष्ट प्रयोजन वाला होते हुए भी शक्यानुष्ठान नहीं है, किन्तु अशक्य है। इसी प्रकार जो बात शक्यानुष्ठान होते हुए भी अनिष्ट प्रयोजन वाली होती है, वह भी विद्वज्जनों के द्वारा अनादरणीय होती है। जैसे— किसी पुत्राभिलाषी पुरुष को अपनी माता के साथ विवाह करने का उपदेश देना।

इसी प्रकार का अभिप्राय आचार्य प्रभाचन्द्र ने भी अपने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' के प्रारम्भ में (मंगलाचरण— श्लोक की टीका में) प्रकट किया है। अन्य भी अनेक ग्रन्थों में इस प्रकार का कथन उपलब्ध होता है। इससे सिद्ध होता है कि जैनाचार्य ग्रन्थ-रचना की प्रक्रिया के प्रति भी अत्यन्त व्यावहारिक रहे हैं। वे अत्यन्त सहजतापूर्वक स्वान्तःसुखाय ही ग्रन्थ रचना करते हैं और वह भी अशक्यानुष्ठान से पूर्णतः बचकर।

जैनचार्यों की व्यावहारिकता का एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कथन-शैली को दो नयों में विभाजित किया है— निश्चय और व्यवहार। वे अकेले निश्चय को ही नहीं मानते, व्यवहार को भी मानते हैं। उनका स्पष्ट कहना है कि इन दोनों नयों को माने बिना तीर्थ का सम्यक् प्रवर्तन नहीं हो सकता है—

“जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं।।”³¹

अर्थ— यदि जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय— इन दोनों नयों को मत छोड़ो, क्योंकि यदि व्यवहार को छोड़ दोगे तो तीर्थ का लोप हो जाएगा और यदि निश्चय को छोड़ दोगे तो तत्त्व का लोप हो जाएगा।

ध्यान रहे जैनदर्शन एक निश्चय प्रधान दर्शन है, उसमें व्यवहार को अभूतार्थ, असत्यार्थ आदि संज्ञाओं से संबोधित करते हुए हेय कहा गया है।³² किन्तु इसके बाद भी जैनाचार्यों ने व्यवहार को न छोड़ने का उपदेश दिया है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का तो यहां तक कहना है कि यदि हम व्यवहार को नहीं मानेंगे तो हमारा जीवन पशुओं से नीचे गिर जाएगा।³³

इस प्रकार यहां हमने जैनदर्शन की व्यावहारिकता पर संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयास किया है, किन्तु हम समझते हैं कि इस विषय पर जैन शास्त्रों में अपरम्पार सामग्री उपलब्ध होती है और उसके आधार पर एक सम्पूर्ण शोध-प्रबंध की ही रचना हो सकती है। शोधार्थियों, शोध-निर्देशकों और शोध-संस्थानों से निवेदन है कि वे इस विषय में आगे आकर स्तरीय शोध-कार्य सम्पन्न कराएं। विषय बहुत अच्छा है। समयानुकूल भी है।

अन्त में मैं अपनी बात श्री सत्यदेव विद्यालंकार जी के महत्त्वपूर्ण विचारों को उद्धृत करते हुए पूरी करना चाहता हूँ—

“जैनधर्म के मूलभूत तत्त्वों की व्याख्या इस रूप में अवश्य ही की जानी चाहिए कि वे वर्तमान कालीन राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सर्वसम्मत हल उपस्थित कर सकें। जो धर्म अपने मौलिक तत्त्वों द्वारा वर्तमान युग की मांग अथवा आवश्यकता की पूर्ति की सामर्थ्य खो बैठता है, उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। अन्य अनेक धर्मों का अस्तित्व इसी कारण खतरे में पड़ गया और इतिहास में वे नामशेष रह गये। इतिहास की यह एक चेतावनी अथवा चुनौती है। बौद्धधर्म तथा ब्राह्मण धर्म की तरह जैनधर्म पतनमुखी न होकर सदैव उत्क्रान्ति मूलक रहा है और उसका अस्तित्व युग-युगान्तरों की विनाशकारी परिस्थितियों में भी बना रहा है।.... जैनधर्म के अनुयायियों को यह सिद्ध कर देना चाहिए कि उनका धर्म विकासोन्मुखी होने के कारण सदा ही परिवर्तनशील रहा है, हर युग की माँग तथा आवश्यकता की उसने पूर्ति की है और आज भी उसमें राष्ट्रधर्म की आवश्यकता की पूर्ति करने की क्षमता विद्यमान है।... जैनधर्म का साम्यभाव या समाजवाद केवल मानव समाज तक सीमित नहीं है, प्राणिमात्र उसकी परिधि में समा जाते हैं। ब्राह्मण धर्म 'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय' अथवा 'मामैकं व्रज' के रूप में एकान्तवादी है, जबकि जैनधर्म उसके सर्वथा विपरीत है। वह विपक्षी के लिए भी अपने ही समान गुंजाइश

रखता है। यदि दूसरे के लिए गुंजाइश रखकर जीवन व्यवहार किया जाये तो संघर्ष की संभावना नहीं रहती। एक नियत दिवस पर ज्ञात-अज्ञात भूलों अथवा अवज्ञाओं के लिए हार्दिक क्षमा-याचना, विश्वबन्धुत्व तथा विश्वशांति की नींव बन सकती है। इस प्रकार व्यावहारिक रूप में जैनधर्म की क्षमता असीम है।³⁴

पाद-टिप्पणी:

1. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र, 6/24
2. आचार्य अमृतचन्द्र, पुरुषार्थसिद्धि उपाय
3. आचार्य कुन्दकुन्द, दर्शनपाहुड 22
4. कविवर घानतराय, देवशास्त्रगुरुपूजा, जयमाला
5. पढिए आचार्य अमृतचन्द्र कृत पुरुषार्थसिद्धि-उपाय
6. आचार्य विद्यानन्द जी की डायरी से
7. परम पुरुषार्थ अहिंसा (जैन विद्या संस्थान), पृ. 46
8. कुछ लोग कहते हैं कि जैनधर्म में कृषि का निषेध किया गया है किन्तु यह दुष्प्रचार मात्र है। ऋषभ देव ने प्रजा को जिन षटकर्मों की शिक्षा दी थी उनमें कृषि एक है और उपरि-उद्धृत श्लोक के कृषक उदाहरण से भी स्पष्ट हो जाता है। 'उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान'।
9. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश 4/532
10. आशाधरसूरि, सागार धर्माभूत 2/82
11. शान्ति पाठ, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ 105
12. 'सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे'- मेरी भावना
13. चामुण्डराय, चारित्रसार, पृष्ठ 42
14. प्रकाशक-बी.सी.जैन, परकोट हिल्स, सागर, म.प्र.
15. आचार्य वादीभसिंह, क्षत्रचूड़ामणि, 3/18
16. आचार्य वादीभसिंह, क्षत्रचूड़ामणि
17. बारह भावना
18. शास्त्र स्वाध्याय का मंगलाचरण
19. समुच्चय चौबीसी पूजा
20. गोमटसार, जीवतत्प्रदीपिका, गाथा 1 की उत्थानिका
21. आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/34
22. आचार्य माणिक्यनन्दि, परीक्षामुख सूत्र, 6/15
23. आचार्य माणिक्यनन्दि, परीक्षामुख सूत्र, 6/19
24. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, 20
25. आचार्य कुन्दकुन्द, नियमसार, गाथा 186
26. पण्डित टोडरमल, मोक्षमार्गप्रकाशक, पाँचवा अधिकार
27. कुंभोज बाहुबलि (महाराष्ट्र) के जैनमन्दिर में दीवार पर लिखा हुआ
28. इसी लेख के अन्त में देखिए।
29. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, दि. 19 सितम्बर 2003
30. आचार्य अनन्तवीर्य, प्रमेयरत्नमाला, मंगलाचरण-श्लोक की टीका
31. आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयसार-टीका में उद्धृत, गाथा 12
32. समयसार, गाथा 11
33. आचार्य कुन्दकुन्द स्मृति व्याख्यानमाला, नई दिल्ली
34. बाबू छोटेलाल अभिनन्दन ग्रन्थ (कलकत्ता) में उनका लेख